अकबर की धार्मिक नीति

Course - M.A. History, Part-II, Paper-X; Prepared by - Dr. P.K. Poddar

अकबर ने धार्मिक महानता के कारण ही अपने साम्राज्य में सफलता पायी थी। उसकी धार्मिक नीति के पीछे उसकी साम्राज्यवादी लिप्सा निहित थी। धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाकर वह एक विशाल साम्राज्य स्थापित करने में सफल रहा। भारत की हिन्दू जनता के लिए वह विदेशी नहीं था। प्रो० एस० आर० शर्मा के अनुसार, हिन्दुस्तान के सभी शासकों में अकबर का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसके अन्य कार्यों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य हिन्दू और मुसलमान को एक दूसरे के समीप लाना है।

अकबर की धार्मिक उदारता कुछ अंशों में उसे विरासत के रूप में मिली थी, कुछ तत्कालिन परिस्थितियों का फल था और कुछ उसके खुद व्यक्तित्व का। अकबर के उदार एवं सहिष्णु होने का श्रेय अबुल फजल तथा फैजी को है। उनके प्रभाव में आकर उसने अपनी प्रजा के हित के लिए वर्ग विहीन नीति का निर्माण किया। अकबर को विरासत के रूप में ही उदार बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसका पिता हुमायूँ सुन्नी था, किन्तु माता हमीदा बानू बेगम शिया थी। उसका पितामह बाबर भी सुन्नी होने के बावजूद धर्मान्ध नहीं था। अकबर की शिक्षा-दीक्षा उसके शिक्षक और संरक्षक बैरम खाँ की देखरेख में हुई। बैरम खाँ शिया था। अतः अकबर कट्टर सुन्नी मुसलमान न बन सका। आगरे में अकबर की शिक्षा अब्दुल लतीफ की देखरेख में हुई। उसने उसे सर्वजनीन शांति (सुलह-ए-कुल) का पाठ पढ़ाया था जिसे अकबर जीवन भर न भूल सका। अकबर की राजपूत रानियों ने भी उसे उदार और सहिष्णु बनाया।

अकबर अपने जीवन-काल में धर्म के तीन चरणों से होकर गुजरा। अकबर के धार्मिक जीवन का प्रथम दौरा उसकी धार्मिक सहिष्णुता से सम्बन्धित है। अकबर ने 1562 ई० में अम्बर-नरेश बिहारीमल की पुत्री से विवाह किया। यह उसके जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उसने अपनी नई धार्मिक नीति का आरंभ यहीं से माना।

वह हिन्दुओं के बहुत निकट आ गया। वह हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार करने लगा। उसने अपनी धार्मिक नीति के प्रथम दौर में हिन्दुओं को बहुत ही रियायतें दीं। उसने हिन्दुओं से वसूल किया जाने वाला तीर्थयात्रा-कर को 1563 ई० में उठा दिया। उसने 1564 ई० में जजिया (Poll tax) को उठा दिया। प्रो० एस० आर० शर्मा के शब्दों में, "जजिया की समाप्ति से अकबर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की जनता को समान नागरिकता प्रदान की। अकबर ने सभी धर्मावलम्बियों को पूजा-पाठ की स्वतंत्रता दी। उसने हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव को अंत करने का प्रयास किया। अकबर के अनुवाद विभाग ने अथर्ववेद, महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों को फारसी में अनुवाद कराया। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों में सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास अकबर ने किया। अकबर ने बल प्रयोग द्वारा धर्म [illegible] परिवर्तन पर प्रतिबंध लगा दिया। अकबर ने राज्य सेवाओं की नियुक्ति में हिन्दू-मुसलमान के बीच भेदभाव नहीं रखा। उसने राज्य के ऊँचे-ऊँचे पदों पर हिन्दुओं को नियुक्त किया। मानसिंह, भगवान दास, टोडरमल, बीरबल आदि उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर आसीन थे। उसने ऐसा करके हिन्दुओं को अपनी ओर मिला लिया।

अकबर स्वभाव से ही जिज्ञासु था। धर्म की सच्चाई को जानने की उसमें तीव्र उत्कंठा थी। उसने इसलिए 1575 ई० में फतेहपुर सीकरी में एक इबादतखाना की स्थापना की। यहाँ हर बृहस्पतिवार को धर्म के विषयों पर चर्चा होती थी। स्वयं अकबर भी आया करता था। पहले इस इबादतखाने में मुसलमान ही आते थे किन्तु 1578 ई० से दूसरे धर्मावलम्बी लोग भी आने लगे। इबादतखाना की स्थापना अकबर के धार्मिक जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है। इबादतखाना की धार्मिक बहस से उसका इस्लाम में विश्वास हिल गया। अकबर को जानकर यह बड़ी निराशा हुई कि उसके धर्म के मानने वाले स्वयं ही अपने सिद्धान्तों में बँटे हुए हैं। यहाँ के वाद-विवादों में उलेमाओं के अशिष्ट व्यवहार से वह बड़ा क्षुब्ध हुआ।

अकबर का मन इस्लाम से उचट गया। उसके धार्मिक जीवन का प्रथम चरण समाप्त हो गया।

इस्लाम धर्म से मन उचट जाने पर अकबर दूसरे धर्मों में सत्य की खोज करने में जुट गया। उसने 1578 ई० में फतेहपुर सीकरी का इबादतखाना सबों के लिए खुलवा दिया। उसने जैन, हिन्दू, जोरोस्ट्रीयन (पारसियन) तथा ईसाई आदि अन्य धर्म के नेताओं को आमंत्रित किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी धर्म में कुछ अच्छी बातें हैं और कुछ खराब बातें। अकबर के व्यक्तित्व पर सारे धर्मों का अच्छा प्रभाव पड़ा। अकबर जोरोस्ट्रीयन (पारसी) धर्म से बड़ा प्रभावित हुआ। फलतः उसने पारसी धर्म के अनुकूल अपने महल में चौबीस घंटे आग जलाए रखने की अनुमति दी। अकबर सूर्य, प्रकाश तथा अग्निपूजा की ओर भक्ति भाव रखने लगा। अकबर सूर्य की पूजा करने लगा। उसने पारसी कलैण्डर को भी अपनाया। अकबर जैन धर्म से भी बड़ा प्रभावित हुआ। वह पशु पक्षियों एवं अन्य छोटे-छोटे जीवों पर दया दिखलाने लगा। उसने बंदियों को छोड़ दिया। जैन धर्म के प्रभाव में आकर अकबर ने शिकार खेलना, माँस खाना आदि पर प्रतिबंध लगा दिया। अकबर हिन्दू धर्म की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। उसकी हिन्दू रानियों ने उस पर गहरा प्रभाव डाला। उसने आत्मा के आवागमन पर विश्वास किया। वह हिन्दू धर्म के पर्व-त्योहारों, जैसे रक्षाबंधन, दीपावली, दशहरा, होली आदि में भी भाग लेने लगा। वह कभी-कभी माथे पर तिलक भी लगाया करता था। हिन्दू प्रथा के अनुसार 'झरोखा-दर्शन' भी किया करता था। बहुत बातों में वह हिन्दू राजा की तरह व्यवहार करता था। उसने अपने अनुवाद विभाग से हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों, जैसे ऋग्वेद, महाभारत, रामायण आदि का फारसी में अनुवाद भी कराया। अकबर अन्य धर्मों की भाँति ईसाई धर्म से भी बड़ा प्रभावित हुआ। वह ईसाई उत्सवों में भाग लेता था। उसने आगरा और लाहौर में चर्च-निर्माण की अनुमति भी दी।

डा० ए०एल० श्रीवास्तव के अनुसार 1579 और 1582 ई० के बीच अकबर इतना उदार हो गया कि कट्टर मुसलमानों ने यह समझ लिया कि अकबर ने इस्लाम धर्म त्याग दिया है, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि वह आजीवन मुसलमान ही रहा। वह धर्मान्ध न होकर उदार हृदय वाला था।

निर्भ्रान्तता अथवा महजूर का आदेश (The Infallibility Decree, Sept. 1579) अकबर के धार्मिक विचारों की स्वतंत्रता का चरम बिन्दु था। वह मुसलमान विद्वानों या उलेमाओं से मुक्त होना चाहता था। वह राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में अपना आधिपत्य चाहता था। अतः अकबर ने 22 जून 1579 ई० को फतेहपुर सीकरी के मुख्य इमाम को पदच्युत कर दिया। अपने दरबारी कवि फैजी द्वारा खुतबा को फतेहपुर सीकरी की मस्जिद में हिजरी सम्वत के पाँचवें महीने के शुक्रवार को अकबर ने पहली बार पढ़ा। खुतबे को पढ़ने के बाद अकबर की लोकप्रियता मुसलमानों में बहुत घट गई। मुसलमानों ने समझा कि अकबर स्वयं पैगम्बर बनने की कोशिश कर रहा है। लेकिन अकबर ने विरोध की कोई परवाह नहीं की। निर्भ्रान्तता-आदेश के अनुसार अकबर प्रधम काजी अथवा इमाम-ए-आदिल बन गया। दूसरे शब्दों में वह देशभर में धर्म के मामले में सर्वश्रेष्ठ गुरु हो गया। इस्लाम धर्म के विवादास्पद प्रश्न पर अकबर का निर्णय अंतिम निर्णय था। इसको निर्भ्रान्तता का आदेश कहते हैं।

अकबर की धार्मिक नीति का अंतिम चरण 1581 से 1605 ई० के बीच था। इबादतखाने में होने वाली बहसों ने अकबर को शांति प्रदान नहीं किया। उसने विभिन्न सम्प्रदायों के विशिष्ट नेताओं से विचार-विमर्श किया। सभी धर्मों के सार को समझा। अंत में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी धर्मों में कुछ-न-कुछ सच्चाई है। अतः उसने धर्म के सारे भेदभावों को दूर करने के उद्देश्य से दीने-इलाही (Din-i-Illahi) चलाया। यह एक प्रकार से धार्मिक-सामाजिक भाईचारे की भावना लिए हुए था। दोनों जातियों (हिन्दू-मुसलिम) को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास था। वह विश्वजनीन सहिष्णुता (सुलह-ए-कुल) के सिद्धान्तों पर

आधारित था तथा इसमें सब धर्मों की अच्छाइयों का सार था। इसमें हिन्दुओं, जैनियों, पारसियों के सिद्धान्तों के अनुरूप एक ईश्वर की सत्ता की भावना निहित थी। दीने-इलाही का उद्देश्य एक राष्ट्रीय धर्म की स्थापना था जो हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए मान्य हो। अबुल फजल के अनुसार, अकबर राष्ट्र का आध्यात्मिक पथप्रदर्शक बन गया एवं वह ईश्वर को प्रसन्न रखना चाहता था। दीने-इलाही का न तो कोई सिद्धान्त, न कोई ईश्वर और न पैगम्बर ही था। दीने-इलाही का प्रमुख सिद्धान्त एकेश्वरवाद (Monotheism) था। इसके अनुसार, संसार में एक ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं और अकबर उसका खलीफा है, अर्थात् इसी पृथ्वी पर ईश्वर को दूत। दीने-इलाही के सदस्य आपस में मिलने पर "अल्लाह-हु-अकबर" और "जल्ला-जलाल-हू" कहकर एक-दूसरे का अभिवादन करते थे। इस धर्म को माननेवाले राजा को अपनी संपत्ति, जीवन, प्रतिष्ठा और धर्म सौंप देते थे। प्रत्येक सदस्य को कुछ दान देना पड़ता था। मांस-भक्षण का निषेध था। सदस्य जब सम्राट् के सामने उपस्थित होते थे तो वे उसको साष्टांग प्रणाम करते थे। सदस्य वृद्धा स्त्रियों और छोटी कुमारियों से विवाह नहीं करते थे। सदस्य सूर्य की पूजा करते थे।

दीने-इलाही के अनुयायी बहुत कम थे। इसका प्रधान कारण यह था कि अकबर कोई पैगम्बर नहीं था जो उसके दीने-इलाही को कोई मानता। साथ ही उसने इसके प्रचार के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया। वह इसको मानने के लिए किसी पर दबाव या शक्ति-प्रयोग नहीं कर सकता था। राजा भगवान दास एवं मानसिंह ने इसे मानने से अस्वीकार कर दिया। अकबर ने उन पर कोई जोर-जबर्दस्ती नहीं की। दीने-इलाही को माननेवाले बहुत कम थे। अकबर की मृत्यु के पश्चात यह मृतप्राय सा हो गया।

दीने-इलाही के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने अलग-अलग मत दिये हैं। डा॰ स्मिथ के अनुसार "दीने

इलाही अकबर के अहंकार और निरंकुशता की भावना की उपज थी। यह उसकी बुद्धिमत्ता का नहीं, मूर्खता का स्मारक था।" डा० श्रीवास्तव के अनुसार दीने-इलाही हिन्दू और मुसलमान जातियों की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक एकता को स्थापित करने का एक प्रयास मात्र था।

अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'दीने-इलाही' अकबर की राजनीतिक बुद्धि एवं धार्मिक उत्साह की अभिव्यक्ति थी। मुगल साम्राज्य के अस्तित्व के लिए यह एक राजनीतिक आवश्यकता था एवं धार्मिक क्षेत्र में यह उसकी सहिष्णुता एवं उदारता के सिद्धान्तों पर आधारित था। अकबर का उद्देश्य एक धर्म, एक संस्कृति, एक समाज, एक समान भावना तथा धारणा को देखना था।

दिने-इलाही वास्तव में कोई नया धर्म नहीं था यह एक सामाजिक-धार्मिक भ्रातृसमुदाय था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अकबर की धार्मिक नीति उसके व्यक्तित्व का एक उज्ज्वल पक्ष थी। इसके द्वारा वह हिन्दू-मुसलमान के बीच समन्वय स्थापित करना चाहता था। वह एक राष्ट्रीय राज्य के निर्माण का प्रयत्न कर रहा था।